॥ॐ॥

॥श्री परमात्मने नमः ॥

॥श्री गणेशाय नमः॥

पैंगल उपनिषद

Shri Hindu Dharm Vedic Education Foundation

विषय सूची

॥ श्री हरि ॥

॥अथ पैङ्गलोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

पैङ्गलोपनिषद्वेद्यं परमानन्दविग्रहम् ।
परितः कलये रामं परमाक्षरवैभवम् ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ पैङ्गलोपनिषत् ॥

॥ पैंगल उपनिषद॥

(शुक्लयजुर्वेदीय सामान्य उपनिषत्)

प्रथमोऽध्यायः प्रथम अध्याय

अथ ह पैङ्गलो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्य
द्वादशवर्शशुश्रूषापूर्वकं परमरहस्यकैवल्यमनुब्रूहीति पप्रच्छ । ॥१॥

(एक बार) ऋषि पैङ्गल याज्ञवल्क्य ऋषि के पास गये और बारह वर्ष तक उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के पश्चात् उनसे कहा कि मुझे परम रहस्य कैवल्य का उपदेश कीजिए ॥१॥

स होवाच याज्ञ्नवल्क्यः सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ।
तन्नित्यमुक्तमविक्रियं सत्यज्ञानानन्दं परिपूर्णं
सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । ॥२॥

(यह सुनकर) ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा-पूर्व में केवल सत् ही था। वही नित्य, मुक्त, अविकारी, सत्य, ज्ञान और आनन्द से पूरित सनातन तथा एकमात्र अद्वैत ब्रह्म है ॥२॥

तस्मिन्मरुशुक्तिकास्थाणुस्फटिकादौ
जलरौप्यपुरुषरेखादिवल्लोहितशुक्लकृष्णगुणमयी
गुणसाम्यानिर्वाच्या मूलप्रकृतिरासीत् । तत्प्रतिबिम्बितं
यत्तत्साक्षिचैतन्यमासीत् । ॥३॥

जिस प्रकार मरुस्थल में जल, सीप में रजत, स्थाणु में पुरुष और स्फटिक में रेखा का आभास होता है, उसी प्रकार उस (ब्रह्म) से रक्त (लाल), श्वेत और कृष्ण वर्णा (सत्, रज, तम रूपी) मूल प्रकृति उत्पन्न हुई, जिसमें तीनों गुण समानावस्था में विद्यमान थे। उसमें जो प्रतिबिम्बित हुआ, उसे ही साक्षी चैतन्य कहा गया ॥३॥

सा पुनर्विकृतिं प्राप्य सत्त्वोद्रिक्ताऽव्यक्ताख्यावरणशक्तिरासीत् ।
तत्प्रतिबिम्बितं यत्तदीश्वरचैतन्यमासीत् । स स्वाधीनमायः सर्वज्ञः
सृष्टिस्थितिलयानामादिकर्ता जगदङ्कुररूपो भवति ।
स्वस्मिन्विलीनं सकलं जगदाविर्भावयति ।
प्राणिकर्मवशादेष पटो यद्वत्प्रसारितः
प्राणिकर्मक्षयात्पुनस्तिरोभावयति । तस्मिन्नेवाखिलं विश्वं
सङ्कोचितपटवद्वर्तते । ॥४॥

वह (मूल प्रकृति) जब पुनः विकार युक्त हो गई, तब सत्त्वगुण युक्त अव्यक्त आवरण शक्ति कहलाई। जो ईश्वर उसमें प्रतिबिम्बित हुआ, वह चैतन्य था। वह माया को अपने अधीन रखता है, जो सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कर्ता है और संसार का अङ्कुर स्वरूप है। वह अपने

अन्दर विलीन सम्पूर्ण जगत् का आविर्भाव करने वाला है। वह प्राणियों के कर्मों के अनुसार इस विश्वरूपी पट को जिस प्रकार प्रसारित करता है, उसी प्रकार उनके कर्म क्षय हो जाने पर समेट भी लेता है। फिर समस्त विश्व उसी में संकुचित (समेटे हुए) पट(वस्त्र) के समान रहता है ॥४॥

ईशाधिष्ठितावरणशक्तितो रजोद्रिक्ता महदाख्या
विक्षेपशक्तिरासीत्। तत्प्रतिबिम्बितं यत्तद्धिरण्यगर्भचैतन्यमासीत् ।
स महत्तत्त्वाभिमानी स्पष्टास्पष्टवपुर्भवति । ॥५॥

ईशाधिष्ठित आवरणशक्ति से रजोगुणयुक्त विक्षेपशक्ति प्रकट होती है, जिसे महत् कहते हैं। उसमें प्रति बिम्बित होने वाला हिरण्यगर्भ चैतन्य हुआ। वह महत्तत्त्वयुक्त कुछ स्पष्ट-कुछ अस्पष्ट शरीर वाला होता है ॥५॥

हिरण्यगर्भाधिष्ठितविक्षेपशक्तितस्तमोद्रिक्ताहङ्काराभिधा
स्थूलशक्तिरासीत् । तत्प्रतिबिम्बितं
यत्तद्विराटचैतन्यमासीत् । स तदभिमानी स्पष्टवपुः
सर्वस्थूलपालको विष्णुः प्रधानपुरुषो भवति ।
तस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः
। अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । तानि पञ्च तन्मात्राणि त्रिगुणानि
भवन्ति । ॥६॥

हिरण्यगर्भ में निवास करने वाली विक्षेप शक्ति से, तमोगुणवाली अहंकार नामक स्थूल शक्ति आविर्भूत हुई। जो उसमें प्रतिबिम्बित हुआ, वह विराट् चैतन्य था। उसका अभिमानी स्पष्ट शरीर वाला, समस्त स्थूल जगत् को पालक प्रधान पुरुष विष्णु होता है। उसकी आत्मा से आकाश तत्त्व की उत्पत्ति हुई। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी तत्त्व का आविर्भाव हुआ। उन्हीं से पञ्च तन्मात्राएँ और तीन गुण उत्पन्न होते हैं ॥६॥

स्रष्टुकामो जगद्योनिस्तमोगुणमधिष्ठाय
सूक्ष्मतन्मात्राणि भूतानि स्थूलीकर्तुं सोऽकामयत ।
सृष्टेः परिमितानि भूतान्येकमेकं द्विधा विधाय
पुनश्चतुर्धा कृत्वा स्वस्वेतरद्वितीयांशैः पञ्चधा
संयोज्य पञ्चीकृतभूतैरनन्तकोटिब्रह्माण्डानि
तत्तदण्डोचितगोलकस्थूलशरीराण्यसृजत् । ॥७॥

जब उस जगत् रचयिता को सृष्टि के निर्माण की इच्छा हुई, तब उसने तमोगुण में अधिष्ठित होकर सूक्ष्म तन्मात्राओं को स्थूल पञ्चतत्त्वों में प्रतिष्ठित करने की कामना की। उन रचित भूतों में से एक-एक के दो भाग किए, फिर उनमें से प्रत्येक के चार-चार भाग किए। इसके पश्चात् प्रत्येक भूत के अर्धांश में अन्य भूतों के अष्टमांश को मिलाकर सबका पंचीकरण किया; तत्पश्चात् इन पञ्चीकृत भूतों से अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि की, फिर उनके योग्य चतुर्दश भुवन रचे तथा उन भुवनों के उपयुक्त स्थूल शरीरों का सृजन किया ॥७॥

स पञ्चभूतानां रजोंशांश्चतुर्धा कृत्वा
भागत्रयात्पञ्चवृत्त्यात्मकं प्राणमसृजत् । स तेषां
तुर्यभागेन कर्मेन्द्रियाण्यसृजत् । ॥८॥

इसके पश्चात् पञ्चभूतों के रजोगुणयुक्त अंश के चार भाग करके तीन भागों से पाँच प्रकार के प्राणों का सृजन किया और चतुर्थांश से कर्मेन्द्रियों का निर्माण किया ॥८॥

स तेषां सत्त्वांशं
चतुर्धा कृत्वा भागत्रयसमष्टितः
पञ्चक्रियावृत्त्यात्मकमन्तःकरणमसृजत् । स तेषां
सत्त्वतुरीयभागेन ज्ञानेन्द्रियाण्यसृजत् । ॥९॥

इसी प्रकार उसके (पञ्चभूतों के) सतोगुण युक्त अंश को चार हिस्सों में विभाजित करके उसके तीन भागों से पंचवृत्त्यात्मक अन्तःकरण और चौथे भाग से ज्ञानेन्द्रियों का सृजन किया ॥९॥

सत्त्वसमष्टित
इन्द्रियपालकानसृजत् । तानि सृष्टान्यण्डे प्राचिक्षिपत्
। तदाज्ञया समष्ट्यण्डं व्याप्य तान्यतिष्ठन् ।
तदाज्ञयाहङ्कारसमन्वितो विराट् स्थूलान्यरक्षत् ।
हिरण्यगर्भस्तदाज्ञया सूक्ष्माण्यपालयत् । ॥१०॥

सत्त्व समष्टि से उसने पाँचों इन्द्रियों के पालक देवताओं का सृजन किया और उन्हें ब्रह्माण्डों में स्थापित कर दिया। उसकी (विष्णु रूप

ब्रह्म की) आज्ञा से वे सभी (देवगण) ब्रह्माण्डों में स्थित होकर निवास करने लगे। उस (ब्रह्म) की आज्ञा से अहंकार समन्वित विराट्, स्थूल जगत् को संरक्षण करने लगा। हिरण्यगर्भ उसकी आज्ञा से सूक्ष्म तत्त्व का पालन करने लगा ॥१०॥

अण्डस्थानि तानि
तेन विना स्पन्दितुं चेष्टितुं वा न शेकुः । तानि
चेतनीकर्तुं सोऽकामयत ब्रह्माण्डब्रह्मरन्ध्राणि
समस्तव्यष्टिमस्तकान्विदार्य तदेवानुप्राविशत् । तदा
जडान्यपि तानि चेतनवत्स्वकर्माणि चक्रिरे । सर्वज्ञेशो
मायालेशसमन्वितो व्यष्टिदेहं प्रविश्य तया मोहितो
जीवत्वमगमत् । ॥११॥

ब्रह्माण्ड में स्थित वे देवगण उस (ब्रह्म) के बिना न तो स्पन्दन कर सके और न ही कोई चेष्टा कर सके। तब उस (ब्रह्म) ने उन्हें चैतन्य करने की इच्छा की। वह ब्रह्माण्ड, ब्रह्मरन्ध्र और समस्त व्यष्टि के मस्तक को विदीर्ण करके उसी में प्रवेश कर गया, तब वे जड़ता सम्पन्न होते हुए भी चेतन की तरह अपनेअपने कर्म में प्रवृत्त हो गये ॥११॥

शरीरत्रयतादात्म्यात्कर्तृत्वभोक्तृत्वतामगमत् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमूर्च्छामरणधर्मयुक्तो
घटीयन्त्रवदुद्विग्नो जातो मृत इव कुलालचक्रन्यायेन
परिभ्रमतीति ॥ ॥१२॥

सर्वज्ञ ईश्वर मायायुक्त होकर व्यष्टि रूप शरीर में प्रविष्ट हो गया और मोह के कारण जीवत्व (जीव भाव) को प्राप्त हो गया। तीन प्रकार के (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) शरीरों से तादात्म्य स्थापित करके कर्तापन और भोक्तापन का अनुभव करने लगा। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा आदि स्थितियों वाला होकर मरण धर्म को प्राप्त करके घटीयंत्र (रहट) के समान उद्विग्न (चंचल) होकर तथा कुम्भकार के चक्र के समान उत्पन्न और मृत होता हुआ जगत् में परिभ्रमण करने लगा ॥१२॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥

॥ प्रथम अध्याय समात ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ पैङ्गलोपनिषत् ॥

॥ पैंगल उपनिषद॥

द्वितीयोऽध्यायः द्वितीय अध्याय

अथ पैङ्गलो याज्ञवल्क्यमुवाच सर्वलोकानां
सृष्टिस्थित्यन्तकृद्विभूरीशः कथं जीवत्वमगमदिति । ॥१॥

पैङ्गल ऋषि ने पुनः याज्ञवल्क्य ऋषि से प्रश्न किया कि समस्त लोकों की सृष्टि, उनका पालन और अन्त करने वाला विभु ईश्वर किस तरह जीवभाव को प्राप्त होता है? ॥१॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः स्थूलसूक्ष्मकारणदेहोद्भवपूर्वकं
जीवेश्वरस्वरूपं विविच्य कथयामीति सावधानेनैकाग्रतया श्रूयताम् ।
ईशः पञ्चीकृतमहाभूतलेशानादाय
व्यष्टिसमष्ट्यात्मकस्थूलशरीराणि यथाक्रममकरोत् ।
कपालचर्मान्त्रास्थिमांसनखानि पृथिव्यंशाः ।
रक्तमूत्रलालास्वेदादिकमवंशाः ।
क्षुत्तृष्णोष्णमोहमैथुनाद्या अग्न्यंशाः ।

प्रचारणोत्तारणश्वासादिका वाय्वंशाः । कामक्रोधादयो व्योमांशाः । एतत्सङ्घातं कर्मणि सञ्चितं त्वगादियुक्तं बाल्याद्यवस्थाभिमानास्पदं बहुदोपाश्रयं स्थूलशरीरं भवति ॥ ॥२॥

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के उद्भवपूर्वक जीव और ईश्वर के स्वरूप की विवेचना करता हूँ, उसे सावधान और एकाग्रचित्त होकर सुनो। ईश्वर ने पंचीकृत महाभूतों के अंशों को लेकर व्यष्टि और समष्टि के स्थूल शरीरों का क्रमशः सृजन किया है। कपाल, चर्म, आँते, अस्थि, मांस और नख (नाखून) ये पृथिवी तत्त्व के अंश से निर्मित हैं। रक्त, मूत्र, लाल (लार) और पसीना आदि जल तत्त्व के अंश से बने हैं। क्षुधा, तृष्णा (प्यास), उष्णता (गर्मी), मोह, मैथुन आदि अग्नि तत्त्व के अंश से बने हैं। चलना, उठना, बैठना, श्वास आदि वायु तत्त्व के अंश से हैं। काम, क्रोध आदि आकाश तत्त्व के अंश से हैं। इस प्रकार इन सबके संघात (समुच्चय) स्वरूप एवं संचित कर्मों से निर्मित त्वचा आदि से युक्त बाल्यावस्था आदि के भाव वाला अनेक दोषों का आश्रय रूप यह स्थूल शरीर होता है ॥२॥

अथापञ्चीकृतमहाभूतरजोंशभागत्रयसमष्टितः प्राणमसृजत् । प्राणापानव्यानोदानसमानाः प्राणवृत्तयः । नागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जया उपप्राणाः । हृदासननाभिकण्ठसर्वाङ्गानि स्थानानि । आकाशादिरजोगुणतुरीयभागेन कर्मेन्द्रियमसृजत् । वाक्पाणिपादपायूपास्थास्तद्वृत्तयः ।

वचनादानगमनविसर्गानन्दास्तद्विषयाः ॥
एवं भूतसत्त्वांशभागत्रयसमष्टितोऽन्तःकरणमसृजत्
। अन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहङ्कारास्तद्वृत्तयः ।
सङ्कल्पनिश्चयस्मरणाभिमानानुसन्धानास्तद्विषयाः ।
गलवदननाभिहृदयभ्रूमध्यं स्थानम् ।
भूतसत्वतुरीयभागेन ज्ञानेन्द्रियमसृजत् ।
श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिव्हाघ्राणास्तद्वृत्तयः ।
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धास्तद्विषयाः ।
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमृत्युकाः ।
चन्द्रो विष्णुश्चतुर्वक्त्रः शम्भुश्च कारणाधिपाः ॥ ॥३॥

इसके पश्चात् अपञ्चीकृत महाभूतों के रजोगुण युक्त अंश के तीन भागों को समन्वित करके प्राण का सृजन किया गया। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँच प्राण हैं। इसी प्रकार नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय ये पाँच उपप्राण हैं। हृदय, आसन (मूलाधार), नाभि, कण्ठ और सर्वाङ्ग उस (प्राण) के स्थान हैं। आकाश आदि पञ्चमहाभूतों के रजोगुणयुक्त अंश के चतुर्थ भाग से कर्मेन्द्रियों का सृजन किया गया। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ (शिश्न) इसके प्रकार हैं। वचन, आदान, गमन, विसर्जन और आनन्द ये इन (कर्मेन्द्रियों) के विषय हैं। इस प्रकार पञ्चमहाभूतों के सत्त्व अंश के तीन भागों से अन्त:करण का सृजन किया। अन्त:करण में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और उनकी वृत्तियाँ समाहित हैं। संकल्प, निश्चय, स्मरण, अभिमान तथा अनुसन्धान क्रमशः इनके विषय हैं। गला, मुख, नाभि, हृदय और भौंहों के मध्य का भाग इनके स्थान हैं। महाभूतों के सत्त्व अंश के चतुर्थ भाग से ज्ञानेन्द्रियों का सृजन किया गया। श्रोत्र,

त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण ये इनके (ज्ञानेन्द्रियों के) प्रकार हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इनके विषय हैं। दिशाएँ, वायु, अर्क (सूर्य), वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मृत्यु के देवता यम, चन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा और शिव ये सभी देवगण इन इन्द्रियों के स्वामी हैं ॥३॥

अथान्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञामयानन्दमयाः पञ्च कोशाः । अन्नरसेनैव भूत्वान्नरसेनाभिवृद्धिं प्राप्यान्नरसमयपृथिव्यां यद्विलीयते सोऽन्नमयकोशः । तदेव स्थूलशरीरम् । कर्मेन्द्रियैः सह प्राणादिपञ्चकं प्राणमयकोशः । ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धिर्विज्ञानमयकोशः । एतत्कोशत्रयं लिङ्गशरीरम् । स्वरूपाज्ञानमानन्दमयकोशः । तत्कारणशरीरम् ॥ ॥४॥

इसके बाद अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ये पंचकोश हैं। अन्नमय कोश वह है, जो अन्न से उत्पन्न होता है, उसी से प्रवृद्ध होता है और अन्ततः अन्न-रसमय पृथिवी में ही विलीन हो जाता है। यही स्थूल शरीर है। कर्मेन्द्रियों के साथ पंचप्राणों का समुच्चय प्राणमय कोश कहलाता है । ज्ञानेन्द्रियों सहित मन मनोमय कोश कहलाता है। ज्ञानेन्द्रियों के साथ बुद्धि का योग विज्ञानमय कोश कहलाता है। इन (प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय) तीनों कोशों का समुच्चय ही लिङ्ग शरीर है। जिसमें अपने स्वरूप का भान नहीं रहता है, वह आनन्दमय कोश है। इसे ही कारण शरीर कहते हैं ॥४॥

अथ ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं

प्राणादिपञ्चकं वियदादिपञ्चकमन्तःकरणचतुष्टयं कामकर्मतमांस्यष्टपुरम् ॥ ॥५॥

इस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, कर्मेन्द्रिय पञ्चक, प्राणादि पञ्चक, वियदादिपञ्चक (पाँच महाभूत), अन्त:करण चतुष्टय, काम, कर्म और अविद्या ये पुर्यष्टक (आठ पुरियों का समूह) कहलाता है ॥५॥

इशाज्ञया विराजो व्यष्टिदेहं प्रविश्य बुद्धिमधिष्ठाय विश्वत्वमगमत् । विज्ञानात्मा चिदाभासो विश्वो व्यावहारिको जाग्रत्स्थूलदेहाभिमानी कर्मभूरिति च विश्वस्य नाम भवति । ॥६॥

ईश्वर की आज्ञा से विराट् ने व्यष्टि में प्रविष्ट होकर तथा बुद्धि में प्रतिष्ठित होकर विश्वत्व को प्राप्त किया अर्थात् विश्व की संज्ञा प्राप्त की। विज्ञानात्मा, चिदाभास, विश्व, व्यावहारिक, जाग्रत, स्थूल देहाभिमानी और कर्मभू ये विश्व के विभिन्न नाम हैं ॥६॥

ईशाज्ञया सूत्रात्मा व्यष्टिसूक्ष्मशरीरं प्रविश्य मन अधिष्ठाय तैजसत्वमगमत् । तैजसः प्रातिभासिकः स्वप्नकल्पित इति तैजसस्य नाम भवति । ॥७॥

ईश्वर के आदेश से सूत्रात्मा, व्यष्टि के सूक्ष्म शरीर में प्रविष्ट होकर मन में अधिष्ठित होकर तैजसत्व को प्राप्त हुआ। तैजस, प्रातिभासिक और स्वकल्पित ये तैजस के नाम हैं ॥७॥

ईशाज्ञया मायोपाधिरव्यक्तसमन्वितो व्यष्टिकारणशरीरं प्रविश्य प्राज्ञत्वमगमत् । प्राज्ञोविच्छिन्नः पारमार्थिकः सुषुप्त्यभिमानीति प्राज्ञस्य नाम भवति । ॥८॥

ईश्वर की आज्ञा से माया की उपाधि से युक्त अव्यक्त, व्यष्टि के कारण शरीर में प्रविष्ट होकर प्राज्ञत्व को प्राप्त हुआ। प्राज्ञ, अविच्छिन्न, पारमार्थिक और सुषुप्ति-अभिमानी ये प्राज्ञ के नाम हैं ॥८॥

अव्यक्तलेशाज्ञानाच्छादितपारमार्थिकजीवस्य तत्त्वमस्यादिवाक्यानि ब्रह्मणैकतां जगुः नेतरयोर्व्यावहारिकप्रातिभासिकयोः । ॥९॥

पारमार्थिक जीव के ऊपर अव्यक्त का अंश रूप अज्ञान आच्छादित है। वह भी ब्रह्म का ही अंश है। 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों से ब्रह्म की एकता प्रकट होती है, परन्तु व्यावहारिक और प्रतिभासिक अंश ब्रह्म से इस प्रकार की एकता नहीं रखते ॥९॥

अन्तःकरणप्रतिबिम्बितचैतन्यं यत्तदेवावस्थात्रयभाग्भवति । स जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाः प्राप्य घटीयन्त्रवदुद्विग्नो जातो मृत इव स्थितो भवति । ॥१०॥

अन्त:करण में जो चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है, वही अवस्थात्रय (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति) का भागी होता है। चैतन्य तत्त्व ही उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होकर घटीयन्त्र के समान उद्विग्न (चंचल) होता है, जो निरन्तर जन्म-मरण को प्राप्त होता रहता है ॥१०॥

अथ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमूर्च्छामरणाद्यवस्थाः पञ्च भवन्ति॥
तत्तद्देवताग्रहान्वितैः श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैः
शब्द्याद्यर्थविषयग्रहणज्ञानं जाग्रदवस्था भवति ।
तत्र भ्रूमध्यं गतो जीव आपादमस्तकं व्याप्य
कृषिश्रवणाद्यखिलक्रियाकर्ता भवति । तत्तत्फलभुक् च
भवति । लोकान्तरगतः कर्मार्जितफलं स एव भुङ्क्ते । स
सार्वभौमवद्व्यवहाराच्छ्रान्त अन्तर्भवनं प्रवेष्टुं
मार्गमाश्रित्य तिष्ठति । ॥११॥

इस प्रकार जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूच्र्छा और मरण ये पाँच अवस्थाएँ होती हैं। जाग्रत् अवस्था उसे कहते हैं, जिसमें श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने देवता के अनुग्रह (शक्ति) से युक्त होकर शब्दादि विषयों को ग्रहण करती हैं। इसे अवस्था में जीव भ्रूमध्य में निवास करते हुए पैरों से लेकर मस्तक पर्यन्त व्याप्त रहता है। और कृषि से श्रवण तक (अर्थात् अपनी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के) समस्त कार्यों को सम्पादित करता हुआ उनके फल भी प्राप्त करता है। वह अपने इन अर्जित कर्मों का फल लोकान्तर (परलोक) में भी भोगता है। वह सार्वभौम के समान लौकिक कार्यों से थककर विश्रान्ति पाने

हेतु अन्दर के विश्राम स्थल में जाने की इच्छा से मार्ग में ही आश्रय लेकर ठहरता है ॥११॥

करणोपरमे जाग्रत्संस्कारोत्थप्रबोधवद्ग्राह्यग्राहकरूपस्फुरणं स्वप्नावस्था भवति । तत्र विश्व एव जाग्रद्व्यवहारलोपान्नाडीमध्यं चरंस्तैजसत्वमवाप्य वासनारूपकं जगद्वैचित्र्यं स्वभासा भासयन्यथेप्सितं स्वयं भुङ्क्ते ॥ ॥१२॥

इन्द्रियों के अपने कार्यों से उपराम हो जाने पर, जाग्रत् अवस्था के संस्कारों से ग्राह्य-ग्राहक रूप जो अर्ध प्रबोधवत् स्फुरणा होती है, उसे स्वप्नावस्था कहते हैं। उस अवस्था में विश्व (स्थूल शरीर भी व्यष्टिचेतना शक्ति) जाग्रत् अवस्था के व्यवहार के लोप हो जाने से नाड़ी के बीच में संचरित होता हुआ तैजसत्व को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् अपनी वासना के अनुरूप अपने ही भासा (तेज) के द्वारा एक विचित्र जगत् की सृष्टि करता है और स्वयं ही अपनी इच्छानुसार उसका भोग करता है ॥१२॥

चित्तैककरणा सुषुप्त्यवस्था भवति । भ्रमविश्रान्तशकुनिः पक्षौ संहृत्य नीडाभिमुखं यथा गच्छति तथा जीवोऽपि जाग्रत्स्वप्नप्रपञ्चे व्यवहृत्य श्रान्तोऽज्ञानं प्रविश्य स्वानन्दं भुङ्क्ते ॥ ॥१३॥

चित्त की एकीकरण (एकाग्रता से युक्त) अवस्था ही सुषुप्ति अवस्था होती है। जिस प्रकार भ्रमण से थककर पक्षी पंखों को समेट कर

अपने नीड़ (घोंसले) की ओर गमन करता है, उसी प्रकार जीव भी जाग्रत् और स्वप्नावस्था के प्रपञ्चों से थक जाने पर अज्ञान में प्रविष्ट होकर आनन्द भोगता है ॥१३॥

अकस्मान्मुद्गरदण्डाद्यैस्ताडितवद्भयाज्ञानाभ्यामिन्द्रियसङ्घ्
आतैः कम्पन्निव मृततुल्या मूर्च्छा भवति । ॥१४॥

अकस्मात् मुद्गर और दण्ड आदि के द्वारा ताड़ित किये जाने पर जिस प्रकार व्यक्ति कम्पित होता है, उसी प्रकार मूच्र्छा की स्थिति में भी भय और अज्ञान के कारण समस्त इन्द्रियाँ कम्पित होती हैं। यह अवस्था (मूच्र्छा) मृत तुल्य होती है ॥१४॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमूर्च्छावस्थानामन्या ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं
सर्वजीवभयप्रदा स्थूलदेहविसर्जनी मरणावस्था भवति । ॥१५॥

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और मूच्र्छा अवस्थाओं से भिन्न एक अवस्था है, जो ब्रह्म (अत्यधिक महान्) से लेकर तिनका (अत्यधिक तुच्छ) पर्यन्त सभी जीवों के लिए भयप्रदा है, जिसके प्राप्त होने पर स्थूल शरीर को परित्याग करना पड़ता है, वह मरणावस्था होती है ॥१५॥

कर्मेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणितत्तद्विषयान्प्राणान्संहृत्य कामकर्मान्वित
अविद्याभूतवेष्टितो जीवो देहान्तरं प्राप्य लोकान्तरं गच्छति ।
प्राक्कर्मफलपाकेनावर्तान्तरकीटवद्विश्रान्तिं
नैव गच्छति । ॥१६॥

उस समय (मृत्यु हो जाने पर) कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, उनके विषय (तन्मात्राओं), प्राणों को एकत्र करके काम और कर्म से समन्वित हुआ जीव अविद्या से आवेष्टित होकर अन्य शरीर को प्राप्त करके दूसरे लोक (परलोक) में गमन करता है। पूर्वकृत कर्मों के फलभोग में फँसे रहने के कारण वह (जीव), उसी प्रकार शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता, जिस प्रकार मँवर में फँसा हुआ कीट ॥१६॥

सत्कर्मपरिपाकतो बहूनां जन्मनामन्ते
नृणां मोक्षेच्छा जायते । तदा सद्गुरुमाश्रित्य
चिरकालसेवया बन्धं मोक्षं कश्चित्प्रयाति । ॥१७॥

सत्कर्मों के परिपक्व हो जाने पर जब अनेक जन्मों के पश्चात् मनुष्य की मोक्ष प्राप्त करने की (बलवती) इच्छा उत्पन्न होती है, तब वह किसी सद्गुरु का अवलम्बन लेकर, लम्बे समय तक उनकी सेवा करके (ज्ञान प्राप्ति के पश्चात्) बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥१७॥

अविचारकृतो बन्धो विचारान्मोक्षो भवति । तस्मात्सदा विचारयेत् ।
अध्यारोपापवादतः स्वरूपं निश्चयीकर्तुं शक्यते ।
तस्मात्सदा विचारयेज्जगज्जीवपरमात्मनो जीवभावजगद्भावबाधे
प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मैवावशिष्यत इति ॥ ॥१८॥

अविचार करने से बन्धन और विचार (सविचार) करने से मोक्ष होता है। इसलिए सदैव विचार (सविचार) करना चहिए। अध्यारोप और अपवाद से स्वरूप का निश्चय किया जा सकता है। इसलिए सदा जगत्, जीव और परमात्मा के विषय में ही विचार (चिन्तन) करना चाहिए। जीव भाव और जगद्भाव को निराकरण करने से अपने प्रत्यगात्मा (जीव) से अभिन्न केवल ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है ॥१८॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

॥ द्वितीय अध्याय समात ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ पैङ्गलोपनिषत् ॥

॥ पैंगल उपनिषद॥

तृतीयोऽध्यायः तृतीय अध्याय

अथ हैनं पैङ्गलः प्रपच्छ याज्ञवल्क्यं
महावाक्यविवरणमनुब्रूहीति । ॥१॥

इसके पश्चात् पैङ्गल ऋषि ने याज्ञवल्क्य से कहा- 'मुझे महावाक्यों का विवरण समझाइये ॥१॥

स होवाच याज्ञवल्क्यस्तत्त्वमसि त्वं तदसि त्वं ब्रह्मास्यहं
ब्रह्मास्मीत्यनुसन्धानं कुर्यात् । ॥२॥

याज्ञवल्क्य बोले-'वह तुम हो' (तत्त्वमसि), 'तुम वह हो' (त्वं तदसि), 'तुम ब्रह्म हो' (त्वं ब्रह्मासि), 'मैं ब्रह्म हूँ' (अहं ब्रह्मास्मि), ये महावाक्य हैं, जिन पर अनुसन्धान (विचार) करना चाहिए ॥२॥

तत्र पारोक्ष्यशबलः सर्वज्ञत्वादिलक्षणो मायोपाधिः
सच्चिदानन्दलक्षणो जगद्योनिस्तत्पदवाच्यो भवति । स
एवान्तःकरणसम्भिन्नबोधोऽस्मत्प्रत्ययावलम्बनस्त्वम्पदवाच्यो
भवति । परजीवोपाधिमायाविद्ये विहाय तत्त्वंपदलक्ष्यं

प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म । ॥३॥

तत्त्वमसि' में 'तत्' पद सर्वज्ञत्व आदि लक्षण से युक्त, माया की उपाधि से युक्त, सच्चिदानन्द रूप, जगत् योनि (मूलकारण) रूप अव्यक्त ईश्वर का बोधक है। वही ईश्वर अन्त:करण की उपाधि के कारण भिन्नता का बोध होने से त्वं' पद का आलम्बन लेकर प्रकट किया जाता है। ईश्वर की उपाधि माया और जीव की उपाधि अविद्या है, इनका परित्याग कर देने से 'तत्' और 'त्वं' पदों का लक्ष्य (आशय) उस ब्रह्म से है, जो प्रत्यगात्मा से अभिन्न है ॥३॥

तत्त्वमसीत्यहं ब्रह्मास्मीति वाक्यार्थविचारः श्रवणं भवति । एकान्तेन श्रवणार्थानुसन्धानं मननं भवति । श्रवणमनननिर्विचिकित्सेऽर्थे वस्तुन्येकतानवत्तया चेतःस्थापनं निदिध्यासनं भवति । ध्यातृध्याने विहाय निवातस्थितदीपवद्ध्येयैकगोचरं चित्तं समाधिर्भवति । ॥४॥

'तत्त्वमसि' और 'अहं ब्रह्मास्मि' इन महावाक्यों के अर्थ पर विचार करना श्रवण कहलाता है। श्रवण किए हुए विषय के अर्थों का एकान्त में अनुसन्धान करना मनन कहलाता है। श्रवण और मनन द्वारा निर्णीत अर्थ रूप वस्तु में एकाग्रतापूर्वक चित्त का स्थापन निदिध्यासन कहलाता है। जब ध्याता और ध्यान के भाव को छोड़कर चित्तवृत्ति वायु रहित स्थान में रखे दीपक की ज्योति के सदृश केवल ध्येय में स्थिर हो जाती है, तब उस अवस्था को समाधि कहते हैं ॥४॥

तदानीमात्मगोचरा वृत्तयः समुत्थिता अज्ञाता भवन्ति ।
ताः स्मरणादनुमीयन्ते । इहानादिसंसारे सञ्चिताः
कर्मकोटयोऽनेनैव विलयं यान्ति । ततोभ्यासपाटवात्सहस्रशः
सदामृतधारा वर्षति । ततो योगवित्तमाः समाधिं धर्ममेघं प्राहुः ।
वासनाजाले निःशेषममुना प्रविलापिते कर्मसञ्चये पुण्यपापे
समूलोन्मूलिते प्राक्परोक्षमपि
करतलामलकवद्वाक्यमप्रतिबद्धापरोक्षसाक्षात्कारं
प्रसूयते । तदा जीवन्मुक्तो भवति ॥ ॥५॥

उसमें (उस अवस्था में) आत्मगोचर वृत्तियाँ उत्पन्न होकर अज्ञात हो जाती हैं, जो स्मरण के द्वारा अनुमानित होती हैं (अर्थात् जिनका स्मरण के द्वारा अनुमान लगाया जाता है)। संसार में अनादिकाल से संचित करोड़ों कर्म इस अवस्था में ही विनष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात् अभ्यास पटुता (परिपक्वता) प्राप्त हो जाने पर सतत सहस्रों अमृत धाराओं की वर्षा होती रहती है। इसीलिए योगज्ञाता समाधि को धर्ममेघ कहते हैं। इसके माध्यम से सम्पूर्ण वासनाजाल नि:शेष (समाप्त) हो जाता है तथा पाप और पुण्य दोनों प्रकार के संचित कर्म समूल विनष्ट हो जाते हैं। यह स्थिति प्राप्त होने पर, प्राक् (पहले) जो, "तत्त्वमसि' महावाक्य का आशय परोक्ष रूप से विदित होता था, वही अब हस्तामलकवत् अवरोध रहित स्पष्ट विदित होने लगता है और ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है, तब योगी जीवन्मुक्त हो जाता है ॥५॥

ईशः पञ्चीकृतभूतानामपञ्चीकरणं कर्तुं
सोऽकामयत । ब्रह्माण्डतद्गतलोकान्कार्यरूपांश्च
कारणत्वं प्रापयित्वा ततः सूक्ष्माङ्गं कर्मेन्द्रियाणि

प्राणांश्च ज्ञानेन्द्रियाण्यन्तःकरणचतुष्टयं चैकीकृत्य सर्वाणि भौतिकानि कारणे भूतपञ्चके संयोज्य भूमिं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ वायुमाकाशे चाकाशमहङ्कारे चाहङ्कारं महति महदव्यक्तेऽव्यक्तं पुरुषे क्रमेण विलीयते । विराड्ढिरण्यगर्भेश्वरा उपाधिविलयात्परमात्मनि लीयन्ते । ॥६॥

ईश्वर ने पञ्चीकृत भूतों का पुनः अपञ्चीकरण करने की कामना की। अतः उसने ब्रह्माण्ड और उसके अन्तर्गत लोकों को कार्य रूप से पुन: कारण रूप प्राप्त करा दिया। इसके बाद उसने सूक्ष्म अङ्ग, कर्मेन्द्रियों, प्राणों, ज्ञानेन्द्रियों और अन्त:करण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) को एकीकृत करके समस्त भौतिक पदार्थों को उनके कारणभूत पंचक में संयोजित करके भूमि को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहंकार में, अहंकार को महत् (विराट्) में, विराट् को अव्यक्त में और अव्यक्त को पुरुष में क्रमशः विलीन कर दिया। इस प्रकार विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर भी उपाधियों के विलीन हो जाने पर परमात्मा में ही विलीन हो जाते हैं ॥६॥

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवकर्मसञ्चितस्थूलदेहः कर्मक्षयात्सत्कर्मपरिपाकतोऽपञ्चीकरणं प्राप्य सूक्ष्मेणैकीभूत्वा कारणरूपत्वमासाद्य तत्कारणं कूटस्थे प्रत्यगात्मनि विलीयते । विश्वतैजसप्राज्ञाः स्वस्वोपाधिलयात्प्रत्यगात्मनि लीयन्ते । ॥७॥

पञ्चीकृत महाभूतों द्वारा निर्मित और संचित कर्मों से प्राप्त स्थूल देह, कर्मों के क्षय हो जाने तथा सत्कर्मों के परिपाक होने से अपञ्चीकृत हो जाती है। वह देह, सूक्ष्मरूप से एकीभूत होकर, कारण रूप को प्राप्त होकर अन्त में उस कारण के भी कारण कूटस्थ प्रत्यगात्मा में विलीन हो जाती है। फिर विश्व, तैजस और प्राज्ञ की भी अपनी-अपनी उपाधियों के लय हो जाने से ये सभी प्रत्यगात्मा में विलीन हो जाते हैं ॥७॥

अण्डं ज्ञानाग्निना दग्धं कारणैः सह परमात्मनि लीनं भवति । ततो ब्राह्मणः समाहितो भूत्वा तत्त्वंपदैक्यमेव सदा कुर्यात् । ततो मेघापायेंऽशुमानिवात्माविर्भवति । ध्यात्वा मध्यस्थमात्मानं कलशान्तरदीपवत् । अङ्गुष्ठमात्रमात्मानमधूमज्योतिरूपकम् ॥८॥

अण्ड (ब्रह्माण्ड) अपनी कारण सत्ता के साथ ज्ञानाग्नि में भस्म होकर परमात्मा में विलीन हो जाता है। इस प्रकार ब्राह्मण (ब्रह्म में रत) पुरुष को समाहित चित्त (ब्रह्म में चित्त को समाहित करके) होकर सदैव 'तत्' और 'त्वं' पदों के साथ ऐक्य करते रहना चाहिए। इस प्रक्रिया से उसी प्रकार आत्म साक्षात्कार होने लगता है, जिस प्रकार मेघों के छूट जाने से अंशुमान् (सूर्य) को प्रकाश प्रकट हो जाता है ॥८॥

प्रकाशयन्तमन्तःस्थं ध्यायेत्कूटस्थमव्ययम् ।
ध्यायन्नास्ते मुनिश्चैव चासुप्तेरामृतेस्तु यः ॥ ९॥
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयः स धन्यः कृतकृत्यवान् ।
जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते । ॥१०॥

विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥ ११॥

कलश के अन्दर स्थित दीपक के सदृश, शरीर में स्थित (हृदय कमल के मध्यस्थित) धूम रहित ज्योति स्वरूप अङ्गुष्ठ परिमाण आत्मा का ध्यान करके जो मुनि अन्त:प्रान्त में स्थित प्रकाशयुक्त कूटस्थ, अव्यय आत्मा का ध्यान नित्य सोते समय तथा मृत्यु के समय भी करता है, वह जीवन्मुक्त है, धन्य है, कृतकृत्य है, ऐसा मानना चाहिए। जीवन्मुक्तत्व (जीवन्मुक्त स्थिति) को छोड़कर वह इस शरीर का परित्याग करके अदेह और मुक्ति को उसी प्रकार प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार पवन स्पन्दन रहित हो जाता है अर्थात् पवन को प्रवाह बन्द हो जाता है ॥९-११॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं तदेव शिष्यत्यमलं निरामयम् ॥ १२॥

तत्पश्चात् वह अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस और अगन्धवत् होकर अव्यय, अनादि, अनन्त, महत् से भी परे, ध्रुव, निर्मल तथा निरामय ब्रह्म ही शेष बचता है ॥१२॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ पैङ्गलोपनिषत् ॥

॥ पैंगल उपनिषद॥

चतुर्थोऽध्यायः चतुर्थ अध्याय

अथ हैनं पैङ्गलः प्रपच्छ याज्ञवल्क्यं ज्ञानिनः किं
कर्म का च स्थितिरिति । ॥१॥

इसके बाद पैङ्गल ऋषि ने याज्ञवल्क्य ऋषि से पुनः प्रश्न किया कि ज्ञानियों के कर्म कौन से हैं और उनकी स्थिति कैसी होती है? ॥१॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः ।
अमानित्वादिसम्पन्नो मुमुक्षुरेकविंशतिकुलं तारयति ।
ब्रह्मविन्मात्रेण कुलमेकोत्तरशतं तारयति । ॥२॥

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि जो मुमुक्षु अमानित्व आदि गुणों से सम्पन्न होता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों को तार देता है और ब्रह्मविद् हो जाने मात्र से वह अपने कुल की एक सौ एक पीढ़ियाँ तार देता है ॥२॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३॥

अपनी आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि तथा मन को ही लगाम जानना चाहिए ॥३॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् । जङ्गमानि विमानानि हृदयानि मनीषिणः ॥ ४॥

इन्द्रियों को अश्व कहा गया है, जो अपने विषय रूपी मार्ग पर गमन करते हैं, परन्तु मनीषियों को हृदय विमान के समान इन सबसे ऊपर उठा हुआ होता है ॥४॥

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्महर्षयः । ततो नारायणः साक्षाद्धृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ ५॥

महान् ऋषियों का कथन है कि यह आत्मा, इन्द्रिय और मन से युक्त होकर भोक्ता बनता है, इसके । बाद हृदय में साक्षात् नारायण प्रतिष्ठित होते हैं ॥५॥

प्रारब्धकर्मपर्यन्तमहिनिर्मोकवद्व्यवहरति । चन्द्रवच्चरते देही स मुक्तश्चानिकेतनः ॥ ६॥

प्रारब्ध कर्मों के क्षय होने तक जीव, सर्प के केंचुल बदलते रहने की तरह अन्य शरीर धारण करता रहता है; किन्तु अनिकेतन (एक ग्राम में एक रात्रि ही निवास करने वाला परिव्राजक) और मुक्त पुरुष आकाश में चन्द्रमा के समान सर्वत्र सञ्चरित होता रहता है ॥६॥

तीर्थे श्वपचगृहे वा तनुं विहाय याति कैवल्यम् ।
प्राणानवकीर्य याति कैवल्यम् ॥ ॥७॥

ज्ञानी पुरुष तीर्थ में शरीर त्याग करे अथवा चाण्डाल के घर में, प्राणों को छोड़कर वह सदा कैवल्य को ही प्राप्त होता है ॥७॥

तं पश्चाद्दिग्बलिं कुर्यादथवा खननं चरेत् । पुंसः
प्रव्रजनं प्रोक्तं नेतराय कदाचन ॥ ८॥

शरीर त्याग के पश्चात् उसके शरीर की चाहे दिशाओं को बलि दे दी जाए अर्थात् खुले में डाल दिया जाए अथवा खोदकर जमीन में गाड़ दिया जाए (वह कैवल्य को ही प्राप्त करता है)। यह विधि परिव्राजक (संन्यासी) के लिए है, इतर (अन्य) किसी के लिए कभी नहीं ॥८॥

नाशौचं नाग्निकार्यं च न पिण्डं नोदकक्रिया । न
कुर्यात्पार्वणादीनि ब्रह्मभूताय भिक्षवे ॥ ९॥

जो संन्यासी ब्रह्मलीन हो गया है, उसके निमित्त अशौच (सूतक) नहीं रहता। उसकी आत्म शान्ति के लिए न अग्नि कार्य, न पिण्ड, न तर्पण और न ही पर्व पर किये जाने वाले श्राद्ध (पार्वण) आदि की ही आवश्यकता है ॥९॥

दग्धस्य दहनं नास्ति पक्वस्य पचनं यथा ।
ज्ञानाग्निदग्धदेहस्य न च श्राद्धं न च क्रिया ॥ १०॥

जिस प्रकार जले हुए को जलाया नहीं जाता और पके हुए को पुनः पकाया नहीं जाता, उसी प्रकार ज्ञानाग्नि से दग्ध (संन्यासी) के लिए न कोई श्राद्ध आवश्यक है और न ही कोई क्रिया-कर्म ॥१०॥

यावच्चोपाधिपर्यन्तं तावच्छुश्रूषयेद्गुरुम् ।
गुरुवद्गुरुभार्यायां तत्पुत्रेषु च वर्तनम् ॥ ११॥

जब तक सांसारिक उपाधियाँ हैं, तब तक गुरु की शुश्रूषा (सेवा) करनी चाहिए । गुरु के समान ही गुरु पत्नी और गुरु सन्तानों के प्रति भी सम्मान पूर्ण व्यवहार करना चाहिए ॥११॥

शुद्धमानसः शुद्धचिद्रूपः सहिष्णुः सोऽहमस्मि सहिष्णुः
सोऽहमस्मीति प्राप्ते ज्ञानेन विज्ञाने ज्ञेये परमात्मनि हृदि
संस्थिते देहे लब्धशान्तिपदं गते तदा प्रभामनोबुद्धिशून्यं भवति ।
॥१२॥

मैं शुद्ध मानस, शुद्ध चैतन्य रूप, सहिष्णु, वह सहिष्णु मैं ही हूँ, इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो जाने से, ज्ञान के अनुभव से और ज्ञेय परमात्मा के हृदय में भली प्रकार प्रतिष्ठित हो जाने से जब देह को शान्ति पद की प्राप्ति हो जाए, तब साधक मन-बुद्धि शून्य होकर चैतन्य रूप हो जाता है ॥१२॥

अमृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम् । एवं स्वात्मानं ज्ञात्वा वेदैः प्रयोजनं किं भवति । ज्ञानामृततृप्तयोगिनो न किञ्चित्कर्तव्यमस्ति तदस्ति चेन्न स तत्त्वविद्भवति । दूरस्थोऽपि न दूरस्थः पिण्डवर्जितः पिण्डस्थोऽपि प्रत्यगात्मा सर्वव्यापी भवति । ॥१३॥

अमृत का पान कर लेने पर दूध से क्या प्रयोजन ? इसी प्रकार अपने आपको ज्ञान (आत्मज्ञान) प्राप्त कर लेने पर वेदों से क्या प्रयोजन (सिद्ध) होता है? ज्ञानामृत से तृप्त योगी के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। यदि कोई कर्तव्य शेष रहता है, तो इसका अभिप्राय है कि वह तत्त्वविद् नहीं है। वह दूर स्थित होने पर भी दूर नहीं और पिण्ड में स्थित होने पर भी पिण्ड से पृथक् प्रत्यगात्मा है, जो सर्वव्यापी होता है ॥१३॥

हृदयं निर्मलं कृत्वा चिन्तयित्वाप्यनामयम् । अहमेव परं सर्वमिति पश्येत्परं सुखम् ॥ १४॥

हृदय को निर्मल करके और अपने को 'मैं अनामय ब्रह्म हूँ', ऐसा चिन्तन करके मैं ही सब कुछ हूँ, ऐसा सोचने व देखने से परम सुख प्राप्त होता है ॥१४॥

यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् ।
अविशेषो भवेत्तद्वज्जिवात्मपरमात्मनोः ॥ १५॥

जिस प्रकार जल में जल, दुग्ध में दुग्ध और घृत में घृत डाल देने से, वे एकरूप हो जाते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा दोनों मिलकर अविशेष अर्थात् अभिन्न (एक) हो जाते हैं ॥१५॥

देहे ज्ञानेन दीपिते बुद्धिरखण्डाकाररूपा यदा भवति
तदा विद्वान्ब्रह्मज्ञानाग्निना कर्मबन्धं निर्दहेत् । ॥१६॥

जब ज्ञान के द्वारा देह में स्थित अभिमान विनष्ट हो जाता है तथा बुद्धि अखण्डाकार हो जाती है, तब विद्वान् पुरुष ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि से कर्म बन्धनों को भस्म कर देता है ॥१६॥

ततः पवित्रं परमेश्वराख्यमद्वैतरूपं विमलाम्बराभम् ।
यथोदके तोयमनुप्रविष्टं तथात्मरूपो निरुपाधिसंस्थितः ॥ १७॥

इसके पश्चात् वह विमल वस्त्र के समान पवित्र और अद्वैतरूप परमेश्वर को प्राप्त करके उसी प्रकार अपने आत्म रूप (सत्य

स्वरूप) में प्रतिष्ठित हो जाता है, जिस प्रकार जल दूसरे जल में प्रविष्ट होकर (मिलकर) एकरूप हो जाता है ॥१७॥

आकाशवत्सूक्ष्मशरीर आत्मा न दृश्यते वायुवदन्तरात्मा ।
स बाह्यमभ्यन्तरनिश्चलात्मा ज्ञानोल्कयापश्यति चान्तरात्मा ॥ १८॥

आत्मा आकाश के सदृश सूक्ष्म और वायु के सदृश दिखाई न पड़ने वाली है। वह बाह्य और अन्दर से भी निश्चल है, जिसे मात्र ज्ञान रूपी उल्का (विद्युत् या मशाल) से ही देखा जा सकता है ॥१८॥

यत्रयत्र मृतो ज्ञानी येन वा केन मृत्युना । यथा
सर्वगतं व्योम तत्रतत्र लयं गतः ॥ १९॥

ज्ञानी कहीं भी और कैसे भी मृत्यु को प्राप्त करे, वह हर स्थिति में ब्रह्म में ही लय हो जाता है, क्योंकि आकाश के समान ही ब्रह्म भी सर्वव्यापी है ॥१९॥

घटाकाशमिवात्मानं विलयं वेत्ति तत्त्वतः । स गच्छति
निरालम्बं ज्ञानालोकं समन्ततः ॥ २०॥

जिस प्रकार घटाकाश आकाश में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार जो योगी अपने को तत्त्वतः जान लेता है, वह सभी ओर से निरालम्ब और ज्ञानालोक स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥२०॥

तपेद्वर्षसहस्राणि एकपादस्थितो नरः । एतस्य ध्यानयोगस्य
कलां नार्हति षोडशीम् ॥ २१॥

यदि कोई एक पैर पर खड़े होकर एक सहस्र वर्ष तक तप करे, तो भी वह ध्यान योग की षोडश कलाओं में से एक के बराबर भी नहीं हो सकता ॥२१॥

इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छति । । अपि
वर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नाधिगच्छति ॥ २२॥

ज्ञान और ज्ञेय को यदि कोई सम्पूर्णरूप से जानना चाहे, तो सहस्र वर्ष की आयु पर्यन्त शास्त्राध्ययन करने पर भी उसका पार नहीं पा सकता ॥२२॥

विज्ञेयोऽक्षरतन्मात्रो जीवितं वापि चञ्चलम् । विहाय
शास्त्रजालानि यत्सत्यं तदुपासताम् ॥ २३॥

मनुष्य को जानना चाहिए कि मात्र अक्षर ब्रह्म ही सत्य है। मनुष्य का जीवन चञ्चल है; इसलिए शास्त्र-जाल को छोड़कर जो सत्य है, उसी की उपासना करे ॥२३॥

अनन्तकर्मशौचं च जपो यज्ञस्तथैव च ।
तीर्थयात्राभिगमनं यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥ २४॥

विभिन्न कर्म-शौच,जप, यज्ञ, तीर्थयात्रा आदि की सार्थकता तभी तक है,जब तक तत्त्व की प्राप्ति न हो ॥२४॥

अहं ब्रह्मेति नियतं मोक्षहेतुर्महात्मनाम् । द्वे पदे
बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च ॥ २५॥

'मैं ब्रह्म हूँ' यही भाव महात्मा पुरुषों के मोक्ष का आधार होता है । बन्धन और मोक्ष के कारण रूप ये ही दो पद हैं, 'यह मेरा है' (बन्धन), 'यह मेरा नहीं है' (मोक्ष) ॥२५॥

ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते । मनसो ह्युन्मनी भावे
द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥ २६॥

मेरा है, यह भाव बन्धन में डालता है और मेरा नहीं है, यह भाव मोक्ष प्रदान करता है। जब मन उन्मनी अवस्था (भाव) को प्राप्त हो जाता है, तब द्वैत भाव समाप्त हो जाता है ॥२६॥

यदा यात्युन्मनीभावस्तदा तत्परमं पदम् । यत्रयत्र मनो
याति तत्रतत्र परं पदम् ॥ २७॥

जब उन्मनी भाव प्राप्त हो जाता है, तभी परम पद प्राप्त होता है। उस अवस्था में जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहीं-वहीं परम पद है ॥२७॥

तत्रतत्र परं ब्रह्म सर्वत्र समवस्थितम् ।
हन्यान्मुष्टिभिराकाशं क्षुधार्तः खण्डयेत्तुषम् ॥ २८॥

परब्रह्म यत्र-तत्र-सर्वत्र अवस्थित है, पर जो व्यक्ति यह नहीं जानता कि मैं ब्रह्म हूँ' उसकी मुक्ति उसी प्रकार नहीं होती (अथवा मुक्ति के लिए किया गया प्रयास निष्फलं जाता है), जिस प्रकार कोई आकाश में मुष्टि प्रहार करे या भूखा व्यक्ति चावल प्राप्त करने के लिए भूसी को कूटे ॥२८॥

नाहं ब्रह्मेति जानाति तस्य मुक्तिर्न जायते । य एतदुपनिषदं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स आदित्यपूतो भवति । स ब्रह्मपूतो भवति । स विष्णुपूतो भवति । स रुद्रपूतो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वेषु वेदेष्वधीतो भवति । स सर्ववेदव्रतचर्यासु चरितो भवति । तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं भवति । दश पूर्वान्दशोत्तरान्पुनाति । स पङ्क्तिपावनो भवति । स महान्भवति । ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयगुरुतल्पगमनतत्संयोगिपातकेभ्यः पूतो भवति । ॥ २९॥

जो इस उपनिषद् का नित्य पाठ करता है (अध्ययन करता है), वह अग्नि के समान, वायु के समान, आदित्य के समान, ब्रह्म के समान, विष्णु के समान और रुद्र के समान पवित्र होता है। वह समस्त तीर्थों में स्नान किए हुए के समान होता है, समस्त वेदों का ज्ञाता होता है, समस्त वेदों में वर्णित व्रतों का पालन करने वाला होता है। उसे इतिहास-पुराण आदि के अध्ययन तथा एक लक्ष रुद्रमन्त्र के जप का फल प्राप्त होता है। उसे दस सहस्र 'प्रणव' नाम के जप का फल मिलता है। उसके पूर्व की दस और बाद की दस पीढ़ियाँ पवित्र हो

जाती हैं। वह साथ में बैठने वालों को पवित्र करता है, जिसके कारण 'पंक्ति पावन' हो जाता है। वह महान् होता है। वह ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण की चोरी, गुरुपत्नी-गमन तथा ऐसे महापातक करने वालों की संगति से उत्पन्न पातकों से मुक्त (पवित्र) हो जाता है ॥२९॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥
॥३०॥

ज्ञानीजन विश्वव्यापी भगवान् विष्णु के परमपद को द्युलोक में व्याप्त दिव्य प्रकाश की भाँति देखते हैं ॥३०॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः
समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ॥ ३१॥

॥ ॐ सत्यमित्युपनिषत॥

वे विप्र (ब्रह्मनिष्ठ जीवनयापन करने वाले) आलस्य प्रमादादि से रहित, सदैव श्रेष्ठ कर्म करने वाले साधक विष्णु (अन्तर्यामी परमेश्वर) के परम पद को प्राप्त करते हैं। यह बात सत्य है-ऐसी यह उपनिषद् (रहस्यमयी विद्या) है ॥३१॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ३॥

॥ चतुर्थ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ इति पैङ्गलोपनिषत् ॥

॥ पैंगल उपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥